

पूर्वोत्तर भारत के समकालीन साहित्य में नारी संवेदना

रोजी कामेई

जब हम पूर्वोत्तर भारत की बात करते हैं तो पूर्वोत्तर को लेकर साहित्य की बहुत अधिक रुचि हमें दिखाई नहीं देती है। यहाँ साहित्य से अभिप्राय 'हिंदी साहित्य' से है। हिंदी में पूर्वोत्तर से संबंधित साहित्य भी बहुत नहीं लिखा गया है और हमें जितनी लिखी हुई सामग्री प्राप्त होती है वह अधिकांश पूर्वोत्तर के बाहर के लोगों द्वारा लिखी गई है। उनमें नारी संवेदना की अभिव्यक्ति न के बराबर ही मिलती है। आदिवासी स्त्री को रूमनियत के संदर्भ में दिखाने की प्रवृत्ति देखी जा सकती है, पर उस साहित्य को भी 'हिंदी साहित्य' ने कितना अपनाया यह अलग विषय है। पूर्वोत्तर के सभी साहित्यकार या तो अंग्रेजी में लिखते हैं या अपनी मातृभाषा में। उस समय तक कुछ गिने-चुने लोग ही हिंदी में लिखते थे। पूर्वोत्तर के साहित्यकारों द्वारा 'हिंदी साहित्य' में अपना स्थान नहीं बना पाने का यह एक प्रमुख कारण भी रहा है। अब इस स्थिति में बदलाव जरूर आ रहा है क्योंकि अब पूर्वोत्तर के लोगों द्वारा हिंदी में भी साहित्य रचा जाने लगा है। उसी श्रृंखला में है अरुणाचल प्रदेश की तुम्बम रीबा जोमो 'लिली' का 'उस रात की सुबह' उपन्यास, जोराम यालाम का 'साक्षी है पीपल' कहानी-संग्रह एवं मोर्जुम लोयी का 'इमिनाम' उपन्यास हैं, जो वहाँ के आदिवासी समाज की पृष्ठभूमि पर लिखी गई रचनाएँ हैं।

उपन्यास एवं कहानी-संग्रह में हर स्त्री पात्र की अपनी अलग-अलग भूमिका और चरित्र है। बावजूद इसके सभी पात्र लगभग एक ही समस्या की 'परिधि' में कैद नजर आते हैं। पुरुष का अहम, उसका वर्चस्व, स्त्री के अस्तित्व को हर बार चोट पहुँचाने की प्रक्रिया से हम बार-बार गुजरते हैं। स्त्री और पुरुष का भेद समाज में इतना विस्तार पा चुका है कि 'कोबा' यानी सीढ़ियाँ भी दो तरह की बनाई जाती हैं। 'यहाँ औरत और मर्द के लिए अलग-अलग सीढ़ियाँ यानी कोबा है।' स्त्री और पुरुष का यह अंतर घर से ही होता हुआ समाज में मान्यता प्राप्त करता है। 'कन्या मूल्य' नहीं चुका पाने की स्थिति सबकी एक जैसी ही है। 'कन्या मूल्य' अरुणाचली समाज में शादी तय हो जाने के बाद लड़के वालों के द्वारा लड़की के बदले में मिथुन देने की परंपरा है। जिसमें लड़की वाले तय करते हैं कि उन्हें कितना मिथुन चाहिए। दोनों परिवारों की सहमति के आधार पर ही 'कन्या मूल्य' तय किया जाता है। उत्तर भारत की 'दहेज' लेने की प्रथा से एकदम उलट यहाँ 'कन्या मूल्य' देने की परंपरा है। इन्हीं पर केंद्रित 'नारी संवेदना' पर मैं अपनी बात रखूँगी। समाज एक दिन की उपज नहीं होता। उसके विकास और लंबे संघर्ष का इतिहास प्रत्येक समाज में दर्ज होता चलता है। जिसके पश्चात ही वह एक 'व्यवस्थित समाज' का रूप प्राप्त करता है। इन लंबी यात्राओं के दौरान 'व्यवस्थित समाज' हेतु वह अपने समाज में कई नीति- नियम एवं कानून बनाता है और यही नीति-नियम, कानून बाद में धीरे-धीरे रीति-रिवाज, परंपराओं का स्वरूप प्राप्त कर लेता है। हर समाज की अपनी कई मान्यताएँ भी होती हैं जो समय के साथ निर्धारित होती चलती हैं। इन रीति- रिवाजों,

मान्यताओं एवं परंपराओं में आज भी बहुत बदलाव संभव नहीं होता है परंतु कुछ बदलाव समय की माँग के साथ भी होते रहे हैं। कहा जाता है कि साहित्य समाज का प्रतिबिंब है। अतः साहित्य रूपी दर्पण में हम समाज के प्रतिबिंब को देख सकते हैं। साहित्य के माध्यम से ही संपूर्ण जीवन को समझा जा सकता है। साहित्य मानव की अनुभूतियों, भावनाओं और कलाओं का साकार रूप है। साहित्य में ही मानव-हृदय को प्रभावित करने की सबसे अधिक शक्ति होती है। साहित्यकार जिस साहित्य की रचना करता है उसकी जड़ें समाज से ही विषय-वस्तु प्राप्त करती हैं और उसी में गहरी जुड़ी होती हैं। वह अपने समाज की परिस्थितियों में ही जीता है और समाज में जो भी परिवर्तन होते हैं उन्हें देखता है, भोगता है, उनसे ही प्रभावित होता है।

उपन्यास एवं कहानी-संग्रह तीनों के कथा केंद्र में 'स्त्री' है। नारी संवेदना के अलग-अलग पक्ष हर पात्र में मुखर रूप से उभरकर आये हैं। संवेदना के पक्ष भले ही अलग-अलग नजर आएँ परंतु सभी पात्रों की समस्या एक जैसी ही दिखती है। प्रत्येक स्त्री समाज की परंपराओं में बंधी 'आदर्श पत्नी' बन अपना कर्तव्य निर्वाह करती जान पड़ती है। उसकी निरर्थकता का एहसास हर बार पति, समाज द्वारा करा दिए जाने के पश्चात भी स्त्री का चुपचाप अपना घर संभालने को ज्यादा तवज्जो देने की अहमियत प्रत्यक्ष दिखाई देती है। समाज की परंपराओं से नहीं लड़ पाने की मजबूरी में उपजी अनेकों पीढ़ियों के बीच स्त्री का बलिदान, उसकी सहनशीलता, उसका मौन पाठकों को आवाज देता तो रहता है परंतु वह आवाज भीतर ही दबी रह जाती है। उनसे बाहर निकलने की चाह हर बार दफन हो जाती। प्रत्येक पात्र 'कन्या मूल्य' नहीं चुका पाने की स्थिति से हमें जूझती नजर आती है। 'लड़के वालों से बीस मिथुन लिए जा चुके थे। माँ-बाप के बिना उन्हें चुकता करना असंभव था।' माता- पिता की मृत्यु के पश्चात इसी मजबूरी के आमीन तादर से शादी कर लेती है और बाद में यही मजबूरी जीवन में बहुत गंभीर समस्या का रूप ले लेती है। "बहुत गुस्सा आ रहा था पिताजी पर कि उन्होंने दस मिथुन में मुझे बेच दिया था।

उनको वापस करने के लिए तो मुझे धनी व्यक्ति का ही सहारा लेना था। उसके लिए चाहे मुझे किसी की तीसरी तो क्या चौथी बीबी भी क्यों न बनना पड़ता।"

गरीबी के बोझ तले एक शादी से निकलने के लिए ऐसा निर्णय कितनी ही स्त्रियों को लेना पड़ा होगा। यहीं से समस्याएँ बढ़नी शुरू हो जाती हैं। इस समस्या की जड़ें यहीं से विस्तार पाती हैं।

बहुविवाह' जैसी प्रथा के बारे में हम केरल और हिमाचल के कुछ एक स्थानों के संदर्भ में ही सुनते हैं। आमतौर पर भारत के अन्य राज्यों एवं स्थानों में इस प्रथा के बारे में सुनने 'को नहीं मिलता। खासतौर पर हम जब आदिवासी समाज की बात करते हैं। आदिवासी समाज एवं महिलाओं की जब भी चर्चा होती है उनके संदर्भ में यही कहा जाता है कि आदिवासी महिलाएँ दुनिया की सबसे आजाद महिलाओं में से एक हैं। अन्य समाज की महिलाओं की अपेक्षा उन्हें ज्यादा आजादी मिली हुई है। कुछ हद तक इस बात को नकारा भी नहीं जा सकता परंतु इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि खासी समाज को छोड़कर

पूर्वतर का पूरा आदिवासी समाज पितृसत्तात्मक समाज पर आधारित समाज है। उपन्यास की नायिका मिनाम बारहवीं पास कर अपनी मर्जी से प्रेम विवाह कर लेती है। परंतु विवाह पश्चात उसे महसूस होता है कि 'प्रेम विवाह' कल्पनाओं में ही अच्छा लगता है। पति उसको मारता, पीटता, दिन-रात उस पर अत्याचार करता। बेटी के जन्म के बाद उसे लगता है कि खुशियाँ फिर वापस लौट आई हैं पर इन खुशियों का भ्रम भी जल्दी ही टूटता है जब उसका पति शादी कर दूसरी बीबी ले आता है। । जब सारे अधिकार पुरुषों के ही हिस्से हैं फिर लैंगिक समानता किस आधार पर तय होगी?

मेघालय का खासी समाज 'मातृसत्तात्मक' समाज है परंतु यह शोध का विषय है कि मातृसत्तात्मक समाज में 'पावर' और 'सत्ता' किसके हाथ में है? इसके साथ-साथ विचारणीय बिंदु यह भी है कि जब हम आदिवासी समाजों में समानता की बात करते हैं तो उसमें लैंगिक समानता की उपस्थिति किस प्रकार है? इसको हमें बारीकी से देखने की जरूरत है। कबा-देर, पंचायत घर जहाँ पर गाँव और जन समुदाय से जुड़े तमाम मुद्दों, मसलों और विवादों पर गाँव की पंचायत और बड़े-बूढ़े मिलकर चिंतन-मनन करके उस पर कई तरह विचार-विमर्श करते हैं। हर गाँव में प्रशासनिक सुविधा के लिए इस तरह की प्रशासनिक व्यवस्था बनी हुई है। गाँव वालों के द्वारा चुने गये प्रतिनिधि को ही गाँव प्रमुख या हैड गाम की उपाधि दी जाती है। अरुणाचल में 'नेप्प न्यिदा' की प्रथा थी। 'नेप्प न्यिदा' माने पैदा होने से पहले गर्भ में ही बड़े-बूढ़ों के द्वारा शादी तय कर दी जाती थी। इस तरह की जबरदस्ती वाली न्यिदा में न सिर्फ स्त्रियों को ही कष्ट भोगना पड़ता था बल्कि पुरुष भी इस तरह के बेमेल विवाह का अंजाम भोगते थे क्योंकि स्त्री के गर्भ में पल रहे शिशु के साथ न्यिदा तो हो जाती है परंतु यदि वह लड़की पैदा हो जाती है तो लड़के के पैदा होने तक इंतजार करना पड़ता है। अतः जब लड़का पैदा होगा तभी उस स्त्री के साथ शादी हो जाएगी। पर इन सारे कष्टों के बीच भी पुरुषों के पास इस समस्या का हल होता है। वे आगे चलकर अपनी पसंद की लड़की से दूसरी शादी कर लेते हैं। 'उसका नाम यापी था' एक ऐसी स्त्री की कहानी है जिसकी शादी बचपन में ही तारो नाम के लड़के से तय कर दी जाती है और वही उसका होने वाला पति शादी से पहले उसकी इज्जत लूट लेता है। बाद में वह किसी और लड़की से शादी कर घर ले आता है। गाँव में तीन-चार मर्दों को छोड़कर सभी दो, तीन बीबियां रखते हैं। यह उनकी प्रतिष्ठा का प्रतीक था। पुरुष का वर्चस्व हर तरह से स्त्री के अस्तित्व को दबा देना चाहता है। गाँव में कुछ पुरुषों की प्रवृत्ति ऐसी भी है जो यह सोचते हैं कि पढ़ाई करके क्या करना है। "पोरके क्या कोरेगा? नो को (तुमको) मालूम नाई है क्या? मेरा आबो इस बोस्ती (बस्ती) का सबसे धनी आदमी है? हम तो बोस्ती में कोई दोस्त नाई है बोलके स्कूल आता है (मुझे पढ़ाई करने की क्या जरूरत है?)" यह एक बच्चे का नहीं एक पुरुष का अहम बोल रहा था, जो यह समझता है कि सारे अधिकार उसके पास हैं। पैसे के बल पर वह कुछ भी कर सकता है। पुरुष के वर्चस्व का संघर्ष यहीं से शुरू होता है।

मिनाम' उपन्यास में यामी जो पेशे से एक शिक्षिका होती है। पुरुष का अहम कैसे एक स्त्री को असहाय और बेबस बनाता है उपन्यास में यामी उसी का एक ज्वलंत उदाहरण है। कक्षा में पूछे गए सवाल का जवाब नहीं दे पाने पर यामी तातुम को सबके सामने मुर्गा बनने को कहती है।

इसके विपरीत सबके सामने मुर्गा बनाने का अपमान उसे इतना नागवार लग जाता है कि घर आकर वह अपने पिताजी से कहता है, 'आबो, हम नाई पोरेंगा (अब से मैं पढ़ाई नहीं करूँगा), हम शादी करेगा, उस मैडम से ही शादी करेगा (मुझे शादी करनी है... उसी टीचर से)। उसने मुझे सबके सामने इन्सल्ट (जलील) किया। मिथुन काटो।' अगले दिन यामी को इलेपा लिनम' के तहत स्कूल से जबरदस्ती उठाकर तातुम के साथ उसकी शादी कर देते हैं। "प्राचीन काल में किसी लड़की की मर्जी के बगैर उसकी शादी तय कर दी जाती थी, इन्कार करने पर उसे जबरन उठाकर कमरे में पुरुष के साथ हाथ-पैर बांधकर भूखे-प्यासे बंद कर दिया जाता था। यह तब तक चलता जब तक भूखी-प्यासी लड़की आत्म-समर्पण न कर दे। कई हालात में उसे बलात्कार जैसे जघन्य अपराध का भी शिकार होना पड़ता था। यह सिलसिला तब तक चलता जब तक लड़की गर्भवती न हो जाती।" अन्य समाज में इसे लाफिया, लिफा के नाम से भी जानते हैं। अब यह प्रथा वक्त के साथ कम होती चली गई है।

स्त्रियाँ अपने हालातों से समझौता कर लेती हैं या उन्हें परिस्थितिवश मजबूरन समझौता करना ही पड़ता है। परंपराओं के अनुसार शादी के लिए कन्या मूल्य के रूप में दिए गए मिथुन लौटाना अत्यंत ही अशुभ माना जाता है। डउस रात की सुबह' उपन्यास की नायिका यापी को भी सिर्फ दस मिथुनों के बदले बलि का बकरा बना दिया गया था। वह स्वयं से ही सवाल करती है, "मिथुन क्या स्त्री का मूल्य सिर्फ दस मिथुन ही होता है? क्या स्त्री का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता? क्या स्त्री और मिथुन में कोई अंतर नहीं होता?" यही प्रथा यापी के जीवन को भी पूरी तरह प्रभावित करती है क्योंकि 'नेप्प न्यिदा' तातो के साथ उसकी बुआ का तय हुआ था परंतु शादी के एक साल बाद बुआ की मृत्यु ने बिना यापी की सहमति से कबा-देर उन दोनों की शादी तय कर देता है। समय बीतता जाता है फिर तातो की भी मृत्यु हो जाती है। एक बार फिर यापी की जिंदगी का फैसला कबा- देर को लेना था। कबा का फैसला हो चुका था कि पैंतालीस पार कर चुके दिवंगत तातो के छोटे भाई तादाप के साथ यापी का विवाह करा दिया जाए। इस प्रकार यापी की सहमति के बिना निर्णय पर निर्णय कबा के द्वारा तुरंत ले लिए जाते हैं। तातो की मृत्यु के बाद तादाप हर प्रकार से यापी को हथियाना चाहता है। घर पर पहले ही उसकी दो बीवी हैं। बावजूद इसके वह हर संभव यापी को अपनी बीबी बनाना चाहता है। परंपरा की आड़ में कबा-देर फैसला उसके पक्ष में ही सुनाता है। और यहाँ संदर्भ आता है उस शख्स का जो पारंपरिक रीति-रिवाजों की आड़ में छलपूर्वक अपने से उम्र में दुगुनी छोटी और या कहूँ कि अपनी बेटि की उम्र से भी छोटी यापी को हथियाने में लगे हुए हैं। उस पर उसके चेहरे पर छाई हुई जीत की खुशी में वह किसी शैतान से कम नहीं दिख रहा था यापी को। जैसे कोई बहेलिया अपने बिछाई हुई जाल में फँसे पंछी को देख शैतानी मुस्कान बिखेरता है, ठीक वैसा ही दिख रहा था तादाप।" समाज के इन्हीं नियम- नीतियों की आड़ में कितनी ही महिलाएँ निरीह पशुओं की तरह एक खूँटे से दूसरे खूँटे बाँधी जाती रही हैं। कितनी ही महिलाएँ इस परंपरा की आड़ में छली जाती रही हैं।

बहुविवाह' जैसी प्रथा जहाँ समाज में एक से अधिक विवाह करने को संपन्नता का प्रतीक माना गया है। उस समाज में महिलाएँ दायम दर्जे से भी नीचे की श्रेणी में आ जाती हैं। इस प्रथा की 'स्वीकार्यता' की

परंपरा बाद में महिलाओं के लिए ही मजबूरी बनती चली गई। इस परंपरा को एकदम खारिज नहीं किया जा सकता था क्योंकि यह उस समय समाज की माँग थी। "मेरे पिताजी की सबसे छोटी पत्नी है वह। मेरी ही उम्र की क्योंकि पिताजी की पहले से चार पत्नियाँ हैं इसलिए सबसे छोटी पर ज्यादा ध्यान नहीं दे पाते। वह मुझसे जबरदस्ती करने लगी। पिताजी को जब पता चला तो उन्होंने कहा कि रख लो कोई हर्ज नहीं।" इस सच्चाई को स्वीकार करने के पश्चात भी आमीन तादर की आदर्श पत्नी बनी रहना चाहती थी। एक दिन छोटी माँ उस पर सोते हुए पेशाब कर देती है। उसका पति इसके विरोध में एक शब्द नहीं बोल पाता। "छोटी माँ को रखा तो ठीक है लेकिन अपनी पत्नी का इतना अपमान देखकर चुप रहना, कैसी बेशर्मी है। माता सूर्य ही साक्षी है।" आए दिन घर पर ससुर की पाँचवीं पत्नी की वजह से कलह और पति की कायरता आमीन को पूरी तरह तोड़ देती है।

गरीब महिलाओं को इस परंपरा के आधार पर एक अमीर पुरुष का सहारा एवं आधार मिल जाता था जिसका भरण-पोषण का जिम्मा पुरुष के पास होता था। इस प्रथा के अंतर्गत पुरुष समाज ने स्त्री को अधीनस्थ करना शुरू किया और अपनी वंश-वृद्धि करता रहा। उसने यह स्थापित कर दिया कि पुरुष उत्पन्न करता है और औरत मात्र पोषण करती है। "पुरुष ने औरत के लिए एक दुनिया बनाने का अधिकार अपने पास रखा। उसने औरत की एक ऐसी अंतरवर्ती दुनिया बनाई, जिसमें उसको हमेशा के लिए कैद कर दिया। किंतु कोई भी अस्तित्व सदा सीमा-बद्ध नहीं रह सकता। समर्पित होने के बावजूद औरत आज चाहती है कि वह इस जैविक-स्तर से ऊपर उठे, अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करें" और आज यही समय की माँग है कि हम अपने अधिकार एवं हक के लिए आवाज उठाएं।

आस्थाओं एवं परंपराओं के नाम पर हमें प्रताड़ित किया जाए तो हम उसका विरोध जरूर करें। परंपराओं में बदलाव आज समय की माँग है। हम स्त्रियाँ दुनिया की आधी आबादी कहलाती जरूर हैं पर समाज के बने बनाए नियम उसे हर बार हाशिए पर ला खड़ा करते हैं। अपने उपन्यास में तुम्बम रीबा जोमो इलिली' ने यह सहर्ष स्वीकार किया है कि, "सदियों से समाज में लोगों ने नारी को कमजोर वर्ग में आँका है और हमारा पूर्वोत्तर भारत के हिमालयी क्षेत्रों के अरुणाचल प्रदेश में भी लगभग यही स्वर गूँजता है। फिर भी इतिहास गवाह है कि नारी ने इन दुर्गम पर्वतों को अपने मेहनत और लगन के बलबूते पर अपने आशियाने का रूप देकर अपने कोमल हाथों से अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए कभी जंगलों से खाद्यान्न जुटाकर तो कभी खेतों में काम करके मुस्कुराते हुए सदैव जूझती आई है।" यहाँ महिलाओं के पास 'चोइस' का विकल्प ही नहीं होता था। क्योंकि 'चोइस' का विकल्प सिर्फ और सिर्फ पुरुष के पास होता है। समाज में पुरुष के लिए एक से अधिक विवाह समृद्धि और संपन्नता के पर्याय के रूप में स्थापित है। किसे परवाह कि एक ही छत के नीचे अपने पति को दूसरी स्त्रियों के साथ साझा होते देख एक पत्नी की नहीं बल्कि सभी पत्नियों की मनःस्थिति क्या रहती होगी। बेशक ऐसी स्थिति में स्त्री एक दूसरे की दुश्मन बन बैठती होगी। 'नदी' कहानी में तारींग की दोनों बीबियाँ साल भर एक दूसरे से ईर्ष्या और जलन के साथ चलती रहीं। "कई अनुभवी मर्दों ने तारींग को सुझाव देना शुरू कर दिया कि दो में शांति कभी नहीं रहती। तीसरी कर लेना चाहिए। दो लड़ती रहें, तो तीसरी के साथ मजे ले लो।" यह सुझाव कभी भी इस समस्या

का हल नहीं हो सकता। यही स्थिति और समस्या उपन्यास में भी चित्रित हुआ है। तादाप के द्वारा यापी को जबरदस्ती अपनी बीबी बनाने के फलस्वरूप उसके घर में मौजूद दोनों बीबियों के बीच कलह पैदा होना भी स्वाभाविक था। कटु सत्य यह है कि कोई भी स्त्री अपने अलावा दूसरी या तीसरी बीबी को अपनाने की स्थिति में नहीं होती।

इसके इतर 'नदी' कहानी में ही पुदुंग का पति तारिंग जब अपनी दूसरी बीबी के साथ शहर चला जाता है तो घर पर अकेली रह जाती पुदुंग को उसके सास-ससुर उसके छोटे देवर के साथ रहने का दबाव डालते हैं। जिस देवर को उसने अपने कंधों पर चढ़ाया, गोदी में खिलाया जिसने उसे आदर-सम्मान के साथ कभी माँ के समान देखा था। यह बहुत ही अजीब सी स्थिति थी जिस स्थिति को पुदुंग ने कभी स्वीकार भी नहीं किया। 'न्यामे गिनाम' अरुणाचल में गालो जनजाति की एक अनोखी किस्म की प्रथा है। इस प्रथा के अंतर्गत पति के भाइयों के साथ पत्नी को पत्नी धर्म निभाना होता है। "प्राचीनकाल में यह प्रथा इसलिए अपनाई गई ताकि माता-पिता शादी के अनावश्यक बोझ से बच सकें। यही नहीं, संपत्ति का भी बँटवारा नहीं होगा।" एक तरफ इस परंपरा का पालन नहीं करने पर स्त्री को अपने भाइयों (देवर) की सही से देखभाल नहीं करने के ताने दिए जाते, वहीं दूसरी तरफ इस परंपरा का पालन करने पर कुछ ईर्ष्यालु पति द्वारा पत्नी को 'बदचलन औरत' की उपाधि दे दी जाती है। स्त्री की मर्जी के बिना ही नियम भी बनता है और उसी नियम के आधार पर उसको प्रताड़ित भी किया जाता है। 'मिनाम' उपन्यास आदिवासी स्त्री संघर्ष की कथा है, जिसके माध्यम से बहुत ही बेबाकी के साथ अपनी शब्दों को मोर्जुम लोयी ने आवाज दी है। उपन्यास में लोकतत्व को बखूबी स्थान मिला है। लोक भाषा ने उपन्यास की शोभा बढ़ा दी है। लेखिका ने निगम लाबोनाम (बहु-विवाह), नेप्प न्यिदा (बाल-विवाह), न्यामे गिनाम इत्यादि परंपराओं को विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है। साथ ही बेटियों को पढ़ाने के मजबूत पक्ष में खड़ी दिखती हैं। यही शिक्षा भविष्य में उनकी आवाज बनेगी इस बात को लेखिका बखूबी जानती है। मजबूरी एक ऐसी स्थिति है जिसमें सब बिना कुछ कहे मंजूर होता चला जाता है चुपचाप। त्याग और समर्पण की प्रक्रिया यहीं से शुरू होती है और अनवरत चलती है। मोर्जुम लोयी मिनाम के माध्यम से यह संदेश देती है कि त्याग और समर्पण के नाम पर हार मान लेना इस समस्या का हल नहीं है। मात्र बारहवीं पास मिनाम अपने पति से तलाक लेकर जब अपने घर वापस आ जाती है। उसका भाई उसको आगे पढ़ने के लिए प्रेरित करता है। दुःख से उबरने की प्रेरणा से मिनाम जल्दी ही असिस्टेंट प्रोफेसर तक का सफर तय कर लेती है। आत्मनिर्भरता ही सशक्तिकरण की सबसे पहली सीढ़ी है। यह सच है कि समाज में पुरानी घिसी-पीटी ढकोसले भरी गलत आस्थाओं को सामाजिक नियम एवं पारंपरिक रीति-रिवाजों का हवाला देकर स्त्रियों पर लादते हुए उन्हें प्रताड़ित करना उचित नहीं है। आज समय के साथ स्थिति में कुछ बदलाव जरूर हुआ है। आधुनिक समय में अरुणाचल के आदिवासी समाज में इस तरह की सामाजिक कुरीतियाँ लगभग खत्म सी हो गई हैं फिर भी कहीं-कहीं दूर ▶ दराज इलाके में जहाँ शिक्षा का प्रचार-प्रसार नहीं हुआ है वहाँ आज भी प्रथा की आड़ में कोई न कोई लड़की प्रताड़ित होती होगी। तुम्बम रीबा जोमो इलिली' अपनी पीड़ा उपन्यास में इस तरह

से दर्ज करती है कि "दुनिया में हर तरफ नारी- सशक्तिकरण का बोलबाला है। ऐसे में बहुत ही लज्जाजनक मानसिकता है हमारी कि हम आज भी इन्हें कुछ मिथुनों के बदले अपना जर-खरीद गुलाम की तरह मानते हैं।" हमें आज ऐसे पूर्वाग्रह से बचने की जरूरत है। फिर इन पूर्वाग्रह से ग्रसित समाज में आदिवासी महिलाओं को किस तर्ज पर आजाद की परिधि में परिभाषित किया जा सकता है ? जागरूकता के साथ मानसिकता भी बदलनी पड़ेगी। तुम्बम रीबा जोमो इलिली' की लिखी इउस रात की सुबह', जोराम यालम के कहानी-संग्रह इसाक्षी है पीपल' एवं मोर्जुम लोयी का उपन्यास इमिनाम' तीनों ही अरुणाचल की पृष्ठभूमि में नारी संवेदना पर आधारित पूर्वोत्तर का समकालीन साहित्य है। जो अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी समाज की सामाजिक और सांस्कृतिक झाँकियाँ प्रस्तुत करता है। जिनमें विशेषकर वहाँ की स्त्रियों की स्थिति एवं मनोदशाओं को हम करीब से महसूस कर पाते हैं। कथा के केंद्र में यापी, यासो, आमीन, पुदुंग, यामी, मिनाम कितनी ही स्त्रियाँ हैं। इनके माध्यम से तीनों लेखिका ने उन तमाम लाचार नारियों की पीड़ाओं एवं उनके दर्द को हमारे समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जो सदियों से समाज द्वारा बनाए गए नियमों को चुपचाप स्वीकार कर बस सहती ही जा रही है। जोराम यालम के अनुसार स्त्रियों के साथ जो अन्याय हुआ उसकी साक्षी माता सूर्य है परंतु इसके साथ पीपल का विराट वृक्ष (एक बिंब है) भी साक्षी है जो सदियों से समाज में एक वर्ग-सा साक्षात् खड़ा है। यह अन्य पेड़ों की हत्या भी करता है, उसी को खाकर जिंदा रहता है। उसकी जड़ें जमीन के भीतर अन्य वृक्ष और पेड़-पौधों का भोजन भी छीन लेती हैं जो सामान्यतः हमें दिखाई नहीं देती। समाज का न्याय और अन्याय इसी के सामने होता रहा फिर भी यह खामोश है। यह एक सामूहिक खामोशी है। एक अपराध है। एक वृक्ष में बसने वाले जीवों को भी एक-दूसरे के प्रति अपराध करता देख यह चुप हैं। ये भयग्रस्त लोग हैं। फिर भी विडंबना यही कि इसी का सम्मान है। जब समाज के नाम पर व्यक्ति की हत्या होती है तब क्या कहानियाँ नहीं कही जानी चाहिए ? बेशक कही जानी चाहिए। स्त्री की सारी संवेदनाएं समाज के बनाए नियमों, परंपराओं के आगे ध्वस्त होती प्रतीत होती हैं। तीनों लेखिका अपने पात्रों के साथ कुछ हद तक न्याय करने का प्रयास भी करती नजर आती हैं जिसमें बहुत सफलता मिलती हमें नहीं दिखती। साथ ही उन पक्षपात भरी सामाजिक व्यवस्थाओं का भी खंडन कर समय के साथ उन सभी में परिवर्तन की माँग भी करती है जो रीति-रिवाजों एवं परंपराओं का हवाला देकर पुरानी घिसी-पिटी आस्थाओं में वहाँ की स्त्रियों को बांधे हुए है। ऐसे ही उपन्यास का कथा नायक 'तामार' उपन्यास के अंत में एक प्रभावी चरित्र मंय उभरकर आता है जो समाज में परिवर्तन चाहता है। "हमें अपनी ऐसी पुरानी और घिनौनी मानसिकता और रीति- रिवाजों को बढ़ावा नहीं देना चाहिए, इन्हें हमेशा के लिए खत्म कर देना चाहिए। हमें अपने परम्परा के नाम पर ऐसी दकियानूसी रीति-रिवाज नहीं चाहिए।" इसी तरह इयासो' कहानी की नायिका भी कहती है कि "तुम लोग पढ़े-लिखे हो, एक से अधिक विवाह मत करना।" हमें यह पता होना चाहिए कि समाज में सकारात्मक बदलाव के साथ-साथ मानसिकता में भी बदलाव जरूरी है। तीनों ने ही समय के साथ बदलाव की जरूरत को अनिवार्य बताया है। बदलाव जरूरी है समय और परिस्थिति वे जरूरत के परिप्रेक्ष्य में।

निष्कर्ष के तौर पर सामाजिक कुरीति जैसे बहुविवाह, बाल-विवाह, बेमेल विवाह की हिस्सा बनती स्त्रियों के दुःख, दर्द और पीड़ा को अभिव्यक्त करती तीनों लेखिकाएं उन असहाय तमाम स्त्रियों की संवेदनाओं की

अभिव्यक्ति एवं उनकी आवाज बनकर उभरती है जो परंपराओं के नाम पर सदियों से छली जाती रही जिनके साथ अन्याय होता रहा। स्त्री के संघर्ष को परम्पराओं के बीच कभी न्याय नहीं मिल पाया। इकन्या मूल्य' नहीं चुका पाने की मजबूरी उनके जीवन के साथ-साथ चलती रही और जीवन में 'बहुविवाह' जैसी प्रथा की अभिन्न अंग बनती रही।

संभवतः किसी भी काल का साहित्य उस समाज को जागरूक बनाने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बदलते युग की तस्वीर भी साहित्य के माध्यम से ही देखी जा सकती है। समय के साथ-साथ समाज की विचारधारा, रहन-सहन, संस्कृति और परम्पराओं में परिवर्तन होता रहा है और यही परिवर्तन समय के साथ- साथ साहित्य में भी परिलक्षित होता रहा है। साहित्य में मनुष्य की विचारधारा बदलने की भी क्षमता होती है। वस्तुतः साहित्य समाज से पूर्णतः प्रभावित होता है। इसी बदलाव में एक उम्मीद यह भी कि 'हिंदी साहित्य' भी पूर्वोत्तर के साहित्य को अपनाकर उसे उचित स्थान प्रदान करेगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. लोयी, मोर्जुम, (2020), मिनाम, जयपुर बोधि प्रकाशन, पृ. 26
2. यालाम, जोराम, (2019), साक्षी है पीपल, दिल्ली : अनुज्ञा बुक्स, पृ. 89
3. यालाम, जोराम, (2019), साक्षी है पीपल, दिल्ली : अनुज्ञा बुक्स, पृ. 51
4. लोयी, मोर्जुम, (2020), मिनाम, जयपुर: बोधि प्रकाशन, पृ. 40
5. लोयी, मोर्जुम, (2020), मिनाम, जयपुर: बोधि प्रकाशन, पृ. 41
6. लोयी, मोर्जुम, (2020), मिनाम, जयपुर : बोधि प्रकाशन, पृ. 42
7. जोमो, रीबा तुम्बम, (2018), उस रात की सुबह, दिल्ली : पृथ्वी प्रकाशन, पृ. 63
8. जोमो, रीबा तुम्बम, (2018), उस रात की सुबह, दिल्ली : पृथ्वी प्रकाशन, पृ. 112
9. यालाम, जोराम, (2019), साक्षी है पीपल, दिल्ली : अनुज्ञा बुक्स, पृ. 68
10. यालाम, जोराम, (2019), साक्षी है पीपल, दिल्ली : अनुज्ञा बुक्स, पृ. 70
11. सिंह, श्रद्धा, (2010), आधी आबादी संदर्भ एवं प्रसंग, दिल्ली : कला मंदिर प्रकाशन, पृ. 17
12. जोमो, रीबा तुम्बम, (2018), उस रात की सुबह, दिल्ली : पृथ्वी प्रकाशन, पृ. 101
13. यालाम, जोराम, (2019), साक्षी है पीपल, दिल्ली : अनुज्ञा बुक्स, पृ. 99 ?

14. लोयी, मोर्जुम, (2020), मिनाम, जयपुर : बोधि प्रकाशन, पृ. 91
15. जोमो, रीबा तुम्बम, (2018), उस रात की सुबह, दिल्ली : पृथ्वी प्रकाशन, पृ. 117
16. जोमो, रीबा तुम्बम, (2018), उस रात की सुबह, दिल्ली : पृथ्वी प्रकाशन, पृ. 117
17. यालाम, जोराम, (2019), साक्षी है पीपल, दिल्ली : अनुज्ञा बुक्स, पृ. 53

संपर्क : शोधार्थी, हिंदी विभाग

जामिया मिल्लिया इस्लामिया, दिल्ली